

हमारा भारत

स्वामी विवेकानन्द



श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धनतोली, नागपुर - १

म म

प्रकाशक—

स्वामी भास्करेश्वरानन्द,
अध्यक्ष श्रीरामकृष्ण आश्रम
बन्तोसी नागपुर-१ म प्र

श्रीरामकृष्ण-शिक्षालय-स्मृति-ग्रन्थमाला

पृष्ठ ४८ शी

(श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित ।)

सूचक—

रामगोपाल गिरफ्तारीसमस्त श्रीवास,

बकरीग मुद्रणालय

बन्तोसी नागपुर-१ म प्र

मृश्य ॥)

वक्तव्य

‘हमारा भारत स्वामी विवेकानन्दजी के तीन कैरों का संग्रह है। स्वामीजी विष्णुजी-सर्व-वम-विरपर में बगलुग्यापी कथाशि प्राप्त कर देने के बाद जब यूरोपीय देशों में प्रमत्त कर रहे थे तब उन्हें प्राप्तापक मैक्समुकर तथा डॉक्टर पॉल ब्रूडन से मिलने का मुनक्कर प्राप्त हुआ था। जब दोनों का मरण पर आत्मिक प्रेम संग्रह तथा में प्रमत्त महान् पाणिपस तथा भारतीय दर्शन के महान् धार्मिक तत्त्वों को सर्वप्रथम पाश्चात्यों के समक्ष बोधित करने का प्रस्ताव सफल तत्त्व ब्रूडन स्वामीजी अत्यन्त प्रभावित हुए थे। प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम दो अध्याय अन्धकारिन् पत्र के सम्बन्ध को प्रकाशनाय मेने पर बरी दो सेठ हैं जो स्वामीजी द्वारा मैक्समुकर तथा पॉल ब्रूडन पर लिखे गए थे तथा पत्रद्वी के महाराज द्वारा समर्पित विवेक अमिबन्धन-पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने तबसे को वर दिया था बरी इस पुस्तक का तीसरा अध्याय है। स्वामीजी ने अमिबन्धन पत्र के उत्तर में यह स्पष्ट रूप से दर्शा दिया है कि भारत का प्रत्येक वर्ग में अवस्थित है और जब तक यह अज्ञान बना रहेगा तब तक विप की कोई भी शक्ति इसका निवृत्त नहीं कर सकती। उन्होंने बरी ही सर्वगर्णी माया में भारत की अवस्थिति का वास्तव चित्रित किया है तथा यह बात दिया है कि केवल भारत को ही नहीं बरन उसके संसार को निवृत्त के गर्व में पणित होन न यदि कोई बचा सफल है तो वह है वैष्णव का शासन संवेत।

ये तीनों सेठ मूल अंग्रेजी में हैं। अनुवाद का भय प्राप्तापक भी सुनीत कुमार बन्य एन ए को है जिसके इन अनुमत्त कार्य के निरु इस अन्गी बहन्ना प्रकाशित करते हैं।

इमें विधान है कि इस पुस्तक में हिन्दी बहन्ना का निरूप दित होय।

काणपुर,

दि ११/११/५२

प्रकाशक



has been

स्वामी विवेकानन्द

हमारा भारत



प्रथम अध्याय

भारतवन्द्य प्राध्यापक मैक्समूलर *

किसी हमारे 'महाशक्ति' के लिए बर्मे का आदर्श खड़े ही यह होगा कि "बर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु सदाचन" अर्थात् "बर्मे ही तुम्हारा अधिकार है, उसके फल में बर्मी नहीं," किन्तु फिर भी किसी निरक्षर बर्मी के बर्मेक्षेत्र से दिसा खने के पड़े और उसका कुछ न कुछ परिणय प्राप्त कर ही लेते हैं।

हमारे कार्य का प्रारम्भ बहुत ही अच्छा हुआ है और हमारे

* महाशक्ति का मत मन्त्रादिको मन्त्र हुआ ऐसा।

मित्रों ने इस विषय में जो दृढ़ ध्यात्विकता प्रदर्शित की है, उसकी कितनी भी प्रशंसा की जाय, योही ही है। निष्कास्ट विचार एवं बहुदुरेय निश्चय ही अय-छाम करेंगे, और इन दोनों अस्त्रों से सुसज्जित होने पर अल्प-संख्यक लोग भी उम्मत विद्रोह-बाधाओं को पराजित करने में समर्थ होंगे।

जो कसपी है, जो अजीब-ज्ञान के अभिमानी हैं, उन सबसे चर्चदा ही दूर रहना, बात यह नहीं है कि अजीब-ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है, पर, मेरे मित्रों, हमारे इस संचार में ऐसे व्यक्तियों में से नये प्रतिशत के अन्दर काम, कांचन और यज्ञ-सृष्टारूप गुप्त अभिचरि विद्यमान है, और दोष दृष्ट प्रतिशत में से भी प्रतिशत व्यक्तियों की दशा तो पागलों जैसी है — वे डाक्टरों तथा वैद्यों के लिए विशेष आलोचना के विषय हैं, दार्शनिकों के लिए नहीं।

हमारी प्रथम और प्रधान आवश्यकता है — चरित्र-गठन, जिसे हम 'प्रतिष्ठित प्रज्ञा' के नाम से अभिहित करते हैं। यह विषय प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है, सभी प्रकार व्यक्ति-समष्टि समाज में भी इसकी आवश्यकता है। संचार हर एक नये प्रयत्न को, यही तक कि वर्म-प्रचार के नये उद्यम को भी सन्देह की दृष्टि से देखता है, अतः इसके तुम्हें निराल न हो जाना चाहिए। यह बेचारा अज्ञानान्धकार में डूबा संचार! — यह तो कितनी ही बार छुटा गया है! किसी नये सम्प्रदाय की ओर संचार कितना ही सन्देह की दृष्टि से देखेगा जबकि उसके प्रति वैमनस्य दिखलाएगा, वह उतना ही उस

भारतवर्ष प्राम्बायक मैकसडलर

सम्प्रदाय के लिए कल्याणकारी है। यदि उस सम्प्रदाय में प्रचार के योग्य कोई सत्य हो, यदि वास्तव में किसी अमाय को हटाने के लिए उसका नाम हुआ हो तो शीघ्र ही सिन्धा प्रसंगा में परिवर्तित हो जाती है एवं पूणा प्रेम का स्वरूप धारण कर लेती है। आजकल लोग प्रायः धर्म को किसी प्रकार की सामाजिक अथवा राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के साधन के रूप में लेते हैं। इस विषय में सावधान रहना। धर्म का उद्देश्य धर्म ही है। जो धर्म केवल सामाजिक सुख का साधन मात्र है, वह अन्य चाहे जो कुछ भी हो, पर धर्म नहीं है। और यह कहना कि बेरोक-टोक इन्द्रिय-सुख-मोग के अतिरिक्त मनुष्य-जीवन का और कोई उद्देश्य नहीं है, नितांत धर्म-विरुद्ध है—इस प्रकार एवं मनुष्यप्रहरी के विरुद्ध मयकर अपराध है।

जिन लोगों में सत्य, पवित्रता और निःस्वार्थता विद्यमान हैं उन्हें स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल की कोई भी शक्ति कोई क्षति नहीं पहुँचा सकती। इन गुणों के रहने पर, चाहे समस्त विश्व ही किसी व्यक्ति के विरुद्ध क्यों न हो जाए, वह अकेला ही सबका सामना कर सकता है।

किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय के साथ सत्ता समझौता न कर देना, सबसे पहले इसी विषय में सावधान रहना होगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि किसी के साथ विरोध करना होगा, किन्तु सुख में हो या दुःख में, अपना भाव पर्यवसित रखो, अपना संघ बचाने के उद्देश्य से दूसरों के कष्टों के अनुसार मर जाओ। तुम्हारी आत्मा

ही ता श्रमस्त ब्रह्माण्ड का आश्रयस्वरूप है, तुम्हारे लिए दूसरे के आश्रय का क्या प्रयोजन? सहिष्णुता, प्रेम एवं सज्जता के साथ प्रतीक्षा करो; यदि इस समय कोई सहायक न मिला तो उचित समय पर अवश्य मिलेगा। शीघ्रता करने की क्या आवश्यकता है? सभी महान् कार्यों के आरम्भ के समय उनकी कार्यशक्ति का अस्तित्व मानो मासूम ही नहीं पड़ता — पर उसी दशा में वास्तव में उनमें यथार्थ कार्यशक्ति संचित रहती है।

मित्रने सोचा था कि बंगाल के एक सुदूर गाँव में रहनेवाले एक निर्धन ब्राह्मण-परिवारवात बाळक के जीवन और उपदेशों को इन कुछ ही वर्षों में ऐसे दूर देश के छेग चाम चर्चेंगे जिनके बारे में हमारे पूर्वजों ने कभी स्वप्न में भी न सोचा होगा। मैं मगधान श्रीरामकृष्ण के विषय में कह रहा हूँ। तुमने क्या यह सुना है कि प्राध्यापक मैकडनल्ल ने 'नाइनटीन्थ सेन्चुरी' नामक अमेरी पत्रिका में श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में एक लेख लिखा है, एवं यदि उपयुक्त सामग्री इन्हें मिले तो बड़े हर्ष से उनकी जीवनी तथा उपदेशों का एक और भी विस्तृत विवरणपूर्ण ग्रन्थ लिखने के लिए वे प्रस्तुत हैं। प्राध्यापक मैकडनल्ल एक असाधारण व्यक्ति हैं। मैं कुछ दिन पहले उनसे मिलने गया था। वास्तव में तो यह कहना उचित होगा कि मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करने गया था, क्योंकि जो कोई भी व्यक्ति श्रीरामकृष्ण से यद्वा एवं प्रेम करते हैं, वे सौ हो या पुरुष, वे चाहे जिस किसी भी सम्प्रदाय, मत अथवा जाति के हों, उनका दर्शन

भारतवासी प्राध्यापक मैक्समूलर

करने जाना मैं तीर्थयात्रा के समान समझता हूँ। “मद्मत्कामाश्च ये मत्कारते मे मत्प्रतापता” — “मेरे भक्तों के जो मत्त हैं वे मेरे सर्वश्रेष्ठ मत्त हैं।” क्या यह धम्म नहीं है?

प्राध्यापक महोदय पहले इस बात का अनुपस्थान करने में प्रवृत्त हुए कि किस व्यक्ति के द्वारा ब्राह्मणमात्र के बड़े नेता स्वर्गीय व.श.ब.म. सेन के जीवन में सहसा महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया; और तभी से वे श्रीरामहृष्णदेव के बीकन एवं उपदेशों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो गए हैं तथा उनकी प्रशंसा किया करते हैं। मैंने कहा, “प्राध्यापकजी, आजकल सहस्रों लोग रामहृष्ण की पूजा कर रहे हैं।” प्राध्यापकजी ने प्रसुप्त में कहा, “यदि लोग ऐसे व्यक्ति की पूजा नहीं करेंगे तो और किसकी करेंगे?” प्राध्यापकजी स्वयं बहुदयता की मूर्ति थे। उन्होंने स्टर्ली बाइबल को तथा मुझे अपने साथ बखानान करने के लिए निमंत्रण दिया, और फिर उन्होंने हमें बाइबलियन पुस्तकालय (Bodleian Library) तथा ऑक्सफोर्ड के कई क्लब्स दिखावाये। वे हम लोगों को रेलवे स्टेशन तक पहुँचाने के लिए भी आए, और जब हमने ठमसे पूछा कि वे हमारे आराम और सुख के लिए इतना भव क्यों कर रहे हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया “रामहृष्ण परमहंस के एक शिष्य के साथ हमारी प्रतिदिन भेंट ता नहीं होगी!” वास्तव में मैंने यह एक नई बात सुनी। सुस्तर पुर्नी से छड़े हुए पीपी तथा लताओं से युक्त शम्भूक उपवास के बीच उनका वह मना/म छूटा भा गइ, सत्तर वर्ष की आयु होते हुए भी वह फिर प्रबल सुख, बाह्युत्तम काम्य सखाट, रजतशुभ केरा,

शक्ति-हृदय के अस्तित्व में स्थित गम्भीर आध्यात्मिक-निधि की अस्तित्व-सूचक उनके मुख की प्रत्येक रेखा, उनकी जीवनसंश्लिषी के उच्चाश्रमा प्रहर्षमयी, उनके निराश-स्थान का वह निरस्तम्ब शान्त वातावरण एवं वित्तुत निर्मल अनन्त आकाश — ये समस्त सम्मिश्रित हो मेरी कल्पना की भारत के उस प्राचीन गौरवशाली युग में खींच छे गए जब भारत ऋषि और राजर्षियों का, उच्चाश्रम वागप्रस्थियों का तथा अरुन्धती और बन्धोद्यादिकों का निराश-रसक था। प्राध्यापक महादेव का जीवन प्राचीन भारत के श्रमियों की चिन्ताराशि के प्रति सद्धानुभूति जागृत करने तथा उसके प्रति छोड़ों के निराश एवं घृणा को गढ़ कर अज्ञात चरम करने के दीर्घकाल में सम्पन्न होनेवाले कठोर कार्य में ही संलग्न था।

मैंने उन्हें एक मायातत्वमिव अपना परिचित के रूप में नहीं देखा, मैंने तो देखा माना कोई आत्मा दिन-प्रतिदिन अज्ञ के साथ अपना एकत्व अनुभव कर रही है, मानो कोई हृदय अनन्त के साथ एकरूप होने के लिए प्रतिकूल प्रसारित हो रहा है। नहीं अन्य लोगों ने शुष्क अप्रयोजनीय तत्त्व-विचारकपी मरुभूमि में दिग्भ्रम हो स्वयं को सो दिया है, वहीं से उन्होंने अमृतसेतु बहाया है। उनकी हृदयध्वनि मानो उपनिषद् के उस घुर में, उस ताक में ध्वनित हो रही है जो गम्भीर अमृतमयी वाणी से घोषणा कर रही है — “तमेकैक जानय आत्मानं अन्या बाधो विमुञ्चय,” — “एकमात्र आत्मा को ही जान ले और अन्य सब बातें त्याग दो।”

भारतवासियों द्वारा प्रेषित वैश्वसूचक

समस्त नगरों को शिक्षा देनेवाले परियोजना एवं दार्शनिक होने पर भी उनके पाण्डित्य और दर्शन में उन्होंने उस से उच्चतर स्तर की ओर ले जाकर आत्म-दर्शन में समर्थ किया है। उनकी अपरा-विषा वास्तव में उनके परा-विषा-अर्थ में सहायक हुई है। यही है प्रकृत विषा। 'विषा ददाति निर्वय' — ज्ञान से ही निर्वय की प्राप्ति होती है। यदि ज्ञान हमें उस परास्पर के निकट न ले जाय, तो फिर ज्ञान की उपयोगिता ही क्या?

और फिर उनका भारत पर अनुराग भी विचित्र है। मेरा अनुमान यदि उसका एक प्रतिशत भी रहता, तो मैं अपने को अन्य समझता। ये असाधारण मनस्वी पचास या उससे भी अधिक वर्षों से भारतीय विचार-राज्य में निवास तथा विचरण कर रहे हैं, और उन्होंने इतनी अद्भुत एवं हार्दिक प्रेम के साथ संस्कृत-साहित्य की सेवा की है कि अन्त में वह उनके हृदय में ही पैठ गया है एवं मानो उनका धर्म ही उसमें रंग गया है।

वैश्वसूचक एक शुद्ध वैदिक है। अद्यतन ही उन्होंने वेदान्त के सूर बेसूर भिन्न भिन्न भावों के भीतर उसकी प्रकृत तात्त्विक पद-ध्वनि है — उस वेदान्त के, जो पृथ्वी के समस्त सम्प्रदायों एवं विचारों को प्रागर्थात् करमेवाला एकमात्र आद्योक्त है और समस्त धर्म विचारों का मूल रूप मात्र है। और रामकृष्ण परमहंस कीन से — वे ये ही प्राचीन तन्त्र के प्रत्यक्ष उदाहरणस्वरूप, प्राचीन भारत

के अग्रज मूर्तस्वरूप, मधिन्य-भारत के पूर्णमासस्वरूप एवं समस्त जातियों के समग्र व्याप्यात्मिक आलोचनात्मकस्वरूप। यह एक मानी हुई बात है कि जोहरी ही रत्नों की परख कर सकता है। अतः यदि इस पदवाच्य कवि ने भारतीय विचार-गगन में किसी नय नक्षत्र के उदित होने से — इसके पहले कि भारतवासी उसका महत्व समझ सकें — विचारी और आहत्य होकर उसकी विशेष परीक्षा करना करे तो क्या यह विरम्य की बात है ?

मैंने उनसे कहा, “आप भारत में क्या आ रहे हैं ? भारतवातियों के पूर्वजों की धिन्ताराशि को आपने वपार्थ रूप में अंगों के सामने प्रकट किया है, अतः वहाँ के सभी अंग आपके धुमागमन से आनन्दित हो उठेंगे।” इतने अधिक का मुझ उज्ज्वल हो उठा, उसके मेथों से अश्रु-किणु निकल पड़े और मधुता से मिर दिखाकर उन्होंने धीरे धीरे कहा, “तब तो मैं आपसे नहीं आऊँगा; तुम अंगों को मेरा दाह-संस्कार कर देना होगा।” आगे और अधिक प्रस्तन करना मुझे मामक-हृदय के पक्कि रहस्यपूर्ण राज्य में अनधिकार प्रवेश करने की चेष्टा की मौलि प्रतीत हुआ। कौन जाने, कवि ने जो कहा था वह यही हो —

“तत्वेनवा स्मरति नूनमत्रोवपूर्वम्।

मावस्तिराणि जननाम्तरमोद्दहानि ॥”

“वे निरवय ही, अज्ञातस्वरूप से हृदय में हृद-निबद्ध, पूर्व-जन्म की मित्रता की बातें सोच रहे हैं।”

भास्करबन्धु प्राण्यापक मैफसमूह

उनका जीवन संसार के लिए परम मंगलकारी रहा है। भगवान से यही प्रार्थना है कि वे और अनेकों कार्य अंजित रहें।

द्वितीय अध्याय

भारतवन्धु डॉक्टर पॉल ल्यूसन *

दस वर्ष से भी अधिक पहले की बात है, किसी एक साधारण आजीविकावाले जर्मन पादरी के परिवार में उनकी आठ पुस्तानों में सबसे बड़ों में एक अल्पवयस्क बालक ने अपने विद्यार्थी-जीवन में एक दिन प्राध्यापक व्यासन को एक नई भाषा — संस्कृत — और उसके साहित्य के विषय में भाषण देते हुए सुना। उस समय संस्कृत भाषा और साहित्य यूरोपीय विद्वानों के लिए विद्वत्त ही मया था। इन

* 'आत्मचरित' पत्र के सम्पादक को भेजा हुआ पत्र, (१८९९)

माखनसु डॉक्टर पॉल डपुसत

भाषणों को सुनने में दाम तो खगते नहीं थे, क्योंकि अभी भी किसी व्यक्ति के छिर यूरोप के किसी विश्वविद्यालय में ससज्ज पढ़ाकर रुपा करना असम्भव है; पर यदि विश्वविद्यालय उनको इस कार्य के लिए विशेष सहायता प्रदान करता हो तो वह एक दूसरी बात है।

प्राध्यापक स्वामन जर्मनी के संसृष्ट भाषा के आखण्डों में अभ्यास्य थे। वे बीरहृदय जर्मन पण्डितों के लगभग अन्तिम प्रतिनिधि थे। ये पण्डित खेग बाल्य में बीर पुरुष थे, क्योंकि पिता के प्रति पवित्र और निःस्वार्थ प्रेम के अतिरिक्त उस समय जर्मन विद्वानों के भारतीय साहित्य की भार आकृष्ट होने का और कौनसा कारण हो सकता था! विद्वान प्राध्यापक स्वासन एक दिन काश्मिराक्षिरिचित 'शाकुन्तल' के एक अध्याप की व्याख्या कर रहे थे, और उस दिन हमारा वह मुखर विद्यार्थी विश्व ध्यान और उत्सुकता के साथ उनके द्वारा बगडाई गई व्याख्या को सुन रहा था, सतना लगभग ओला शायद वही और कार्य न था। व्याख्या का विषय अक्षय ही अस्मत् हृदयग्राही एवं अद्भुत प्रणीत हो रहा था, पर सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि एक यूरोपीय व्यक्ति के अनन्दस्य मुख से उच्चारित होने के कारण उस अपरिचित सम्राज्ञि के फ्रिडर रूप धारण कर के मे पर भी उस बातक को उन दाशों में मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया था। वह अपने घर धारण गया, किन्तु उसने जो कुछ सुना था उसे वह रात में नींद में भी भूल न सका। उसने माना इतने दिनों के अज्ञात, अपरिचित देश का रहता दर्शन पा लिया, और उस देश प्रतीत हुआ

कि माना यह देश उसके देशों द्वारा अन्य सब देशों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न रंग-विरंगों से विभूत है, तथा उसने उसमें जैसी मोहनी-शक्ति पाई, वैसा उसके युक्त-हृदय ने और कभी भी अनुभव नहीं किया था।

इस हावदार युवक के मित्रों का उसके बहुत कुछ आशा रक्ता स्वाभाविक हो या। वे तो उत्कण्ठापूर्वक उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे जब इस युवक की स्वाभाविक प्रकृत शक्तियाँ प्रकटित हो उठेंगी तथा जिस दिन यह युवक एक बड़े प्राध्यापक के पर पर सब बेटों का अधिपति होकर आचारण लोगों से अद्भुत और आदर प्राप्त करेगा। किन्तु कहीं से बीच में संशय भाषा का यह झटका आ सका हुआ। अविनाश यूरोपीय विद्वानों ने तो उस समय संशय भाषा का नाम ही नहीं सुना था—इस अर्थ-प्राप्ति की बात तो दूर ही रही। मैंने पहले ही कहा है कि संशय भाषा का विद्वान् होकर दम्प्योशर्जन पश्चिमी देशों में अभी भी एक अछम्भव-सा कार्य है; किन्तु पर भी हमारे इस युवक की संशय चीकने की इच्छा नहीं प्रकट हो उठी। यह बड़े दुःख की बात है, हम आधुनिक भारतीयों के लिए यह समझना अनन्त कठिन हो गया है कि विद्या के लिए ही विद्याभ्यास किस प्रकार हो सकता है। फिर भी, गण्डोप, बनारस एवं भारत के अध्याप्य स्वानों के परिश्रमों में, विशेषकर सन्ध्यावियों में हम आज भी ऐसे बड़े और युक्त देख सकते हैं या विद्या के लिए ही विद्याभ्यास में रत हैं—ज्ञान के लिए ही ज्ञानलाभ की इच्छा में उन्मत्त हैं। ऐसे विद्यार्थी

भारतवर्षु डाक्टर पॉल डब्लूसन

जिन्हें आपुनिर यूरोपीय भाषाएँ हिन्दुओं की विज्ञान-सामग्रियों का समाज होने पर भी तथा उनकी अपेक्षा अध्ययन के लिए घटस गुना कम सुविधाएँ उपलब्ध रहने पर भी सा रात पर रात तैल-दीप की अस्थिर धीमी प्रकाश में हस्तलिखित ग्रन्थों का इतनी एकाग्रता से अध्ययन करते रहते हैं निमसे अन्य किसी भी देश के छात्रों की आँखों की वृद्धि-शक्ति सम्पूर्ण नष्ट हो सकती है, ऐसे विद्यार्थी जो किसी दुर्लभ हस्त-लिखित ग्रन्थ या किसी विद्वान्ता अध्यापक की शोध में बनें भी भिक्षा पर ही निर्वाह करते हुए पैर खड़े होते हैं एवं जो अपने मन और शरीर की सम्पूर्ण शक्ति अपने पठ्य विषय में तब तक निर्याजित करते रहते हैं जब तक उनके बाछ उपेक्षा नहीं हो जाते तथा उनका शरीर अधिक आपु होने के कारण क्षीण नहीं हो जाता — ऐसे विद्यार्थी ईश्वर की कृपा से अभी तक हमारे देश से बिलकुल ही सुप्त नहीं हो गए हैं। आज भारत जिसको अपनी मूर्खता का कर्णिक गौरव अनुभव करता है, वह निश्चय ही अतीत काष्ठ की सघन योग्य सन्तानों का इस प्रकार का परिश्रम का फलस्वरूप है; और इस कथन की सत्यता तुम्हें ही प्रकट हो जायेगी यदि हम प्राचीन युग के भारतीय पण्डितों के पाण्डित्य की गम्भीरता एवं चारित्र्य तथा उनके निस्वार्थभाव एवं उद्यम की एकाग्रता की तुलना आपुनिर भारतीय विद्वान्ताओं की शिक्षा के परिणामों के साथ करें। यदि भारतवर्षी अपने अतीत युग के इतिहास की भीति से अन्धकार आतिषों के बीच अपने समुचित गौरव-पद पर आसीन होना चाहते हैं, तो उन्हें

अपने जीवन में शुद्ध निष्कारण चिन्तनशक्ति तथा यथार्थ पाण्डित्य-राम के लिए स्वार्थहीन निष्कण्ट ठासाह को पुनः प्रकट रूप से जगामा पड़ेगा। इस प्रकार की ज्ञानतृष्णा ने ही जर्मनी को सघार के श्रेष्ठ राष्ट्रों की श्रेणी में आ दिया है — मरके ही वह सब बातों में सेष्ठतम न हुआ हो।

अस्तु। मैं कह रहा था कि इस जर्मन छात्र के हृदय में संस्कृत शिक्षा के प्रति अनुराग बड़ा प्रकट हो उठा था। संस्कृत सीखना तो दीर्घकाल में सम्पन्न होनेवाला कार्य है, परन्तु पर चढ़ने जैसा कठिन है। इस जर्मन छात्र के जीवन का इतिहास भी जगत्प्रसिद्ध अन्य सफल निष्पार्थियों की मीति है, — उन सब लोगों के समान वह पुस्तक भी बटोर परिग्रह कर, अनेकों पत्र सहकर, अदभ्य ठासाह के साथ अपने गत में दृढतापूर्वक लगा रहा और इससे फलस्वरूप वह यथार्थ बौरमनोचित सफलता के गौरवमुकुट से विभूषित हुआ। और अब, केवल यूरोप ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष इस कीर्ति (Kiel) विद्व-विद्यालय के दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पीछे बसूवन को मानता है। मैंने अमेरिका और यूरोप में संस्कृत के कई प्राध्यापकों को देखा है। उनमें से अनेक बेगन्त की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हैं। मैं उनके पाण्डित्य एवं निःस्वार्थ कार्य में जीवनात्मर्ग को देखकर मुग्ध हो गया हूँ। परन्तु पीछे बसूवन (जो संस्कृत में स्वयं को देखते कहेकर सम्बोधित होना पसन्द करते हैं) और कुछ मैक्समूलर को मैं भारत तथा भारतीय विचारधारा का सर्वविद्या आन्तरिक एवं यथार्थ मित्र समझता हूँ। कीर्ति शहर के इस ठासाही वैज्ञानिक, उनके भारत-भ्रमण की

संमिली उनकी मधुर प्रकृतिवाली स्खलित्वाली तथा उनकी श्रम छोटी कृपा से मेरी प्रथम भेंट, जर्मनी और हॉबेण्ड होकर हमारी एक साथ कन्दन की यात्रा तथा कन्दन एवं उसके वास्तव के रूपों में हम लोगों की आनन्ददायक सम्मिलन — ये सब घटमाये मेरे जीवन की अन्य मधुर स्मृतियों के साथ विरकाष्ठ तक बनी रहेंगी ।

यूरोप के सर्वप्रथम संस्कृतज्ञों की संस्कृत-बर्धा में समालोचना-दासि की अपेक्षा कल्पना दासि अधिक थी । उनकी ज्ञान तो अन्य था, किन्तु उस अन्य ज्ञान से वे आशा बहुत करते थे; और बहुत ही जो कुछ थोड़ा-बहुत जानते उससे वही अधिक शीघ्र मारा करते थे । फिर, उस समय काष्ठिदाससिचित 'दाकुम्भक' की ही भारतीय दर्शनशास्त्र का चरम सिद्धास्त सोचने का भागकपन भी उनमें समाया हुआ था । अतः स्वाभाविकता ही, प्रथम दृष्ट की प्रतिक्रिया के रूप में एक ऐसे स्मृष्टर्शा समालोचक-सम्प्रदाय का अन्वुदय हुआ जिसे मैं तो संस्कृत का ज्ञान ही था और मैं संस्कृत के अध्ययन से जिसे कुछ ज्ञान की आशा ही दीख पड़ती थी, और यह सम्प्रदाय ऐसा था जो प्राण्यदेशीय सभी बलुओं पर उपहास किया करता था । यद्यपि इस सम्प्रदाय के साग प्रथम दृष्ट की अन्यथापूर्ण दृष्टि की, जिसके सम्प्रदाय भारतीय मादिस की प्रत्येक बलु नन्दनकामन की भीति प्रतीत होती थी, तीव्र आलोचना करते थे, परन्तु इनके स्वयं के सिद्धास्त प्रथम दृष्टियों के सिद्धास्तों की तरह ही समान रूप से नितान्त अनुसृत एवं अन्वित हुआपूर्ण थे । और इन दोनों के इस विषय में दुःसाहच के का

जाने का नितान्त स्वाभाविक कारण यह था कि भारतीय विचारधारा की ओर सहानुभूतिरहित और विना समझे-झूठ इठाव सिद्धान्त बना डालनेवाले ये पण्डित और समालोचकगण इसकी चर्चा ऐसे माताओं के सामने करते थे जिनकी इस विषय में किसी प्रकार की राय प्रकट करने की यदि कोई योग्यता थी तो वह थी उनकी सख्त माया के सम्बन्ध में पूर्ण अनभिज्ञता! इस प्रकार के समालोचक पण्डितों के प्रतिष्ठा से यदि अनेक प्रकार के विद्वत् सिद्धान्त निकलें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सहसा बेचारे हिन्दू ने एक दिन सुबह जगकर देखा, उसका जो कुछ भी अपना था वह आज नहीं है—एक अप्रतिष्ठित आदि ने उसके पास से उसकी धिक्प-बिधा छीन ली है, एक दूसरी ने उसकी रयापन्न-बिदा एवं एक तीसरी ने उसके समस्त प्राचीन विज्ञान को छीन लिया है, यहाँ तक कि उसका वर्म भी अब उसका अपना नहीं है। इस प्रकार के उत्तेजनापूर्ण भौतिक गवेषणाश्रमपरा-रूप युग के बाद अभी अपेक्षाकृत अच्छा समय आया है। लोगों ने अब समझा है कि वास्तव में संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन स्वयं किए बिना अपना ठमका समुच्चित आलोचनात्मक ज्ञान प्राप्त किए बिना बेवज्र अन्दाज से कुछ सिद्धान्त बना लेना, प्राच्यतत्त्व-गवेषणा के क्षेत्र में भी बेवज्र अपनी हैंसी ही करता है, और भारत में जो सब प्रयाणें बहुत दिनों से प्रचलित हैं उनको भी घमड़ के साथ हटा देना कोई बुद्धिमान की काय नहीं है, क्योंकि उनमें ऐसी अनेकों अच्छाइयों हैं जिन्हें छोटा स्वयं में भी नहीं छोड़ सकते।

भारतवर्ष टॉफर पॉल डब्लुसन

यह बड़े इर्ध की बात है कि यूरोप में आमतौर पर एक नये प्रकार के सफ़ल पण्डितों का अभ्युदय हो रहा है—वे अज्ञात सहा-नुमतिपूर्ण तथा यथार्थ पण्डित हैं। वे अज्ञात हैं, क्योंकि वे ठीक विचार-वाले हैं; एवं सहानुमतिपूर्ण हैं, क्योंकि वे निष्ठान्त हैं। और हमारे मैक्समूर ही प्राचीन दस वी शृंखला के साथ नये दस वी शृंखला को जोड़नेवाली कड़ी के समान हैं। हम हिन्दू लोग पश्चिमदेशीय अन्य सफ़ल पण्डितों की अपेक्षा मिथ्या ही उनके प्रति अधिक कठिनी हैं, और जब मैं उनका उस महान् कार्य के बारे में सोचता हूँ जिस उन्होंने अदम्य तराह के पाप अपनी दीक्षावाया में हाथों में लेकर बुद्धावस्था में उचड़ी सफ़लतापूर्वक परिणामित की, तब तो मैं दग हो जाता हूँ। इनके बारे में एक बार जरा सोचा तो मही, किम प्रकार वे हिन्दुओं की आँखों से भी अति कठिनीता से पड़े का सक्नेवाले अत्यन्त पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों की दिन-रात छान-बीन कर रहे हैं।—और फिर वे खिचिपी ऐसी मापा में बिनी हुई हैं जिन्हें मली प्रकार सफ़लने में एक हिन्दू पण्डित की भी समस्त जीवन-काल का वायगा; उन्हें फिर ऐसे निमी अमावाकृत पण्डित की महापता भी नहीं मिली है जिसकी बुद्धि कुछ ठीके पर लरीदी जा सके तथा 'अत्यन्त मई गयेणापूर्ण' निमी पुस्तक की भूमिका में विचित्रे मामोलेन द्वारा उस पुस्तक की स्याति बनाई जा सके। इस व्यक्ति के विषय में और भी जरा सचकर तो देखो, किम तरह वे सादन-माप्य के अन्तर्गत किसी दाय्य या ककर का दपार्थ रीति से पाठ करने एवं ठीक ठीक जप दूँ निश्रुत्ये के,

छिए कभी दिन पर दिन और कभी महीनों व्यतीत कर (जैसा उन्होंने स्वयं मुझे कहा है) अन्त में इस दीर्घकाळ के अध्यवसाय के फल-स्वरूप वैदिक साहित्यरूपी अरण्य में से होकर अग्न्य छोड़ों के नामों के लिए सुगम मार्ग बनाने में सफल हुए हैं; पहले इस व्यक्ति और इनके कार्य के सम्बन्ध में सोचकर देखो और फिर सोचो कि वास्तव में उन्होंने हम छोड़ों के लिए कितना किया है। यह हो सकता है कि उन्होंने अपनी अनेकों रचनाओं में जो कुछ कहा है, हम उस सबसे सहमत न हों,—और निश्चय ही इस प्रकार पूर्णतया सहमत होना असम्भव है। किन्तु हम सहमत हों या न हों, पर इस सब की कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि हमारे पूर्वपुरुषों के साहित्य की रक्षा, सचकाय कितार एवं उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए हम सबमें जो कोई नितना करने की आज्ञा कर सकते हैं, इस अकेले व्यक्ति ने सबसे पहले गुमा अविक्र किया है और यह कार्य उन्होंने अत्यन्त सदा एवं प्रेमपूर्ण हृदय के साथ सम्पन्न किया है।

यदि मैक्समूखर को इस नये आन्दोलन का प्राचीन अप्रसूत कहा जाय तो ड्यूसन निश्चय ही उसके एक मनीन नेता हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं। हमारे प्राचीन शास्त्ररूपी साग में जो सब विचार एवं आध्यात्मिकता के अमूल्य रत्न मिश्रित हैं, मायातत्व की आलोचना की ठसुझता में बहुत दिनों तक उनको हमारी दृष्टि से जोखर रखा था। मैक्समूखर उनमें से कई विचारों को अनसाराकरण की दृष्टि में जाये, एवं सर्वश्रेष्ठ मायातत्व-विचारक होने के कारण उनके कथन की

भारतवर्षु डॉक्टर पॉल डब्लुसन

प्रामाण्य-शक्ति इतनी अधिक थी कि जनमाधारण का ध्यान करबम ही उन विचारों की ओर आकृष्ट हो गया। भाषातत्त्व की आलोचना की ओर डब्लुसन की कोई रुचि न थी, बल्कि वे दर्शन-शास्त्र में पारंगत थे। वे प्राचीन ग्रीक तथा वर्तमान जर्मन तत्त्वालोचना-प्रणाली एवं उनके सिद्धान्तों से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने मैक्समूलर का अनुसरण करके अस्मत्त साहस के साथ उपनिषद् के गंभीर दार्शनिक तत्त्व-सागर में गोता लगाया, तब उन्होंने देखा कि उसमें किसी प्रकार की भ्रष्टि नहीं है बल्कि वह हमारी बुद्धिबृत्ति एवं हृदय की सींग पूर्णतया पूरी करता है, — और फिर उन्होंने उसी तरह साहस के साथ उस विषय को समस्त जगत् के सामने प्रोपिन किया। पाश्चात्य पण्डितों में केचड डब्लुसन ने ही वैदिक के सम्बन्ध में अपनी राय बहुत स्थायीमत्ता-पूर्णक प्रकट की है। अधिकांश पण्डित जिस प्रकार दूमरी की समालोचना के डर से मरमौत रहा करते हैं, उस प्रकार डब्लुसन ने कभी भी किसी के मनामन की परवाह नहीं की। बाल्य में इस सगर में ऐसे साहसी छागों की आवश्यकता है जो निर्भीकता व भाव प्रकट सब के सम्बन्ध में अपना मन प्रकट कर सकें, और विरापन उनकी आवश्यकता यूरोप में अधिक है वहाँ के पण्डितगण — समाजमय से हो अपरा इन् प्रकट के अन्य किन्हीं कारणों से — ऐसे सभी विभिन्न धर्ममनों एवं आचार-व्यवहारों का किसी तरह उनकी भ्रष्टियों को छिपा-कर समर्पन करने की चेष्टा कर रहे हैं जिन समयें सादर उन छागों में से बहुतों का ही विधास नहीं है। अतएव मैक्समूलर

हमारा भारत

तथा इष्टम का इस प्रकार साहसपूर्ण एवं स्पष्ट रूप से सख्त का समर्थन बाल्मिक में विरोध रूप से प्रसंगीकृत है। मेरी तो यही इच्छा है कि उन्होंने हमारे छात्रों के गुणों के प्रदर्शन में जिस साहस का परिचय प्रदान किया है, उसी प्रकार साहस के साथ वे उनके उन सब दोषों को भी प्रदर्शित करें जो परवर्ती काल में भारतीय विज्ञान-प्रगति में बाधक बन गए हैं, विशेषतः उन युक्तियों को जो हमारी सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए उस विज्ञानप्रगति के प्रयोग के सम्बन्ध में आ गई हैं। आज हमें इनके ही समान यथार्थ मित्रों की सहायता की आवश्यकता है जो भारत में काम-बर्धमान इन द्विविध-गतिशील रोगों की गति का रोप कर सकें, जहाँ एक ओर तो प्राचीन प्रथा में पड़े हुए, दासत्वशृङ्खला में बन्धने हुए स्वेयं प्राण्य कुसस्कारों को ही छात्रों का धार-सत्य समझकर उनसे निपटने रहना चाहते हैं और जहाँ दूसरी ओर है छात्रों की कटु निन्दा करनेवाले — जो हमारे और हमारे इतिहास में कुछ भी अच्छाई नहीं देख सकते, और जो यदि हो सक तो धर्म एवं दर्शन की सीखभूमि हमारी इन प्राचीन जगमगुमि के समुच्च आध्यात्मिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठानों को इसी क्षण लोह-फोड़कर धूल में मिला देने को तत्पर हैं।

द्वितीय अध्याय

भारत का वैशिष्ट्य *

“अब जब धर्म की अवसिति होती है और अधर्म बढ़ता है तब तब में पुनः धर्म की संस्थापना के लिये अकर्तव्य होना है।”

हे रामन्, ये शब्द पवित्र गीताशास्त्र में सग्रीव जनात्मक महाभारत के वाक्य हैं। यह वाक्य संसार में व्यापारिक दृष्टि-प्रवाह के जनात्मक उत्थान और पतन के निम्नों का मूल मन्त्र-स्वरूप है।

ये सब परिवर्तन बारम्बार संसार में भये भये लाठ और छन्दों

* एम्बेडकर के मन्त्रों के लिये के महाभारत के अन्तिम-अध्याय का उद्धरण, (१८९५)

में प्रकाशित हो रहे हैं और यद्यपि अम्याम्य स्थान् परिवर्तनों की तरह उनके कार्यक्षेत्र में प्रत्येक क्षुब्ध से क्षुब्ध बलु क ऊपर उनका प्रभाव पड़ रहा है, फिर भी अनुकूल स्थान में ही उनकी कार्यशक्ति का प्रकाश अधिक पाया जाता है।

समष्टि रूप से विभिन्न प्रकार संसार की आदिम अवस्था त्रिगुणों का साम्य-भाव है, सभी प्रकार व्यक्ति रूप से देखने पर माहूम होता है कि इस धूमनी पर जब तक स्तुम्प्यजाति वर्तमान रूप में रहेंगी तब तक विषमता और उसकी निम्न सहचरी — साम्यबाम की चेष्टा — दोनों ही साथ साथ चकती रहेंगी। इसके फलस्वरूप संसार में सर्वत्र भिन्न भिन्न जातियों में, उनके बाह्य आवरणों में, यहाँ तक कि प्रत्येक व्यक्ति में प्रकट विशेषतः स्पष्ट होता रहेगा जिससे कि एक, दूसरे से पूर्ण रूप में मेलीमेलीत जाया जा सकेगा। इस साम्य-भाव की श्रुति और उसका पुन प्राप्त करने के लिए समुद्रम चेष्टा ही इस प्रकृति का विकास या अन्वेषण है, और जब तक यह साम्यावस्था पुन न आ जायेगी, तब तक इसी प्रकार चकता रहेगा।

अतएव निरपेक्ष भाव से, मानो दुःख में लौकिक, सभी जातियों को समान शक्ति दी जाने पर भी, प्रत्येक जाति ही मानो किसी विशेष प्रकार के शक्तिरूप एवं उसके निरूप के उपयोगी एक एक अद्भुत यंत्र-रूप है, और उस जाति के पास अम्याम्य अनेक शक्तियों के रहने पर भी वही विशेष शक्ति उस जाति के विशेष अम्यण के रूप में उद्भासित होती है। स्तुम्प्यप्रकृति के किसी विशेष भाग के विशेष

मित्रता तथा सहयोग होने पर हमका प्रभाव अत्यधिक मात्रा में सभी पर होता है, परन्तु जिस जाति का वह भाव विशेष लक्षण है एवं साधारणतः जिसे केन्द्र बनाकर वह उत्पन्न हुआ है, उसी जाति के अन्तर्गत को वह सबसे अधिक आकाङ्क्षित कर देता है। इसी कारण धर्म-अगत में किसी आन्दोलन के उपस्थित होने पर, उसके फलस्वरूप, भारत में अवश्य ही अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रकटित होंगे — उस भारतवर्ष में, जिसको केन्द्र बनाकर बारम्बार धर्म की तरफें उन्मुख हैं, क्योंकि धर्म ही भारत का विशेषत्व है।

प्रत्येक व्यक्ति केन्द्र उसी वस्तु को सब समझता है, जो उसे उसके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होती है। सांसारिक भावापन्न व्यक्तियों के समझ वही वस्तु सत्य है, जिसके विनिमय में उन्हें धर्म की प्राप्ति होती हो; और जिसके बदले में उन्हें धन-साम नहीं होता, वह उनके लिए असत्य है। जिस व्यक्ति की आकाङ्क्षा दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने की है, उसके लिए तो सत्य वही है जिसके द्वारा उनकी यह आकाङ्क्षा पूर्ण होती है, और शेष सब उसके विरुद्ध निरर्थक है। इसी प्रकार जो वस्तु किसी व्यक्ति की आकाङ्क्षापूर्ति में सहायक नहीं होती, उस वस्तु में वह व्यक्ति किसी प्रकार का धर्म या धर्म नहीं देख पाता।

जिन व्यक्तियों का एवमात्र उत्पन्न करने जीवन की समस्त शक्तियों के विनिमय में वाचन, भाव-वश या अन्य किसी प्रकार के भोग-विनाश का अर्थ बनता है, जिनके समस्त रणभूमिगामी सुन-स्नान समा-दत्त ही शक्ति के विकास का एकमात्र प्रतीक है, जिनके निश्चय इन्द्रिय-

सुख ही जीवन का एकमात्र सुख है — ऐसे लोगों के लिए भारत सर्वदा ही एक बड़े मस्खल के समान प्रतीत होगा, जहाँ की आँधी का एक झोंका ही उनकी कल्पित जीवन-विकास की धारणा के लिए मानो स्युस्करूप है।

किन्तु जिन व्यक्तियों की जीवन-तुष्णा इन्द्रिय-जगत् से सुदूर स्थित अमृतसरिता के दिव्य चच्छि-पात्र से सम्पूर्ण सुख चुकी है, जिनकी आत्मा ने—सर्व के केंद्र-साग की तरह—काम, क्रोधन और यश-तृष्णा के त्रिविध बन्धनों को दूर फेंक दिया है, जिनका मन शांति की अत्युच्च शिक्षा पर पहुँच गया है और जो वहाँ से इन्द्रिय-योगों में आबद्ध तथा नीचबनोचित कष्ट, विषाद और द्वेष-हिंसा में रत व्यक्तियों को प्रेम तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देखते हैं, जिनके संवित पूर्व कर्म के प्रभाव से आँखों के सामने से अज्ञान का आवरण छुट हो गया है जिन्होंने वे अक्षर नाम-रूप को भेद कर प्रकृत सत्य का दर्शन करने में समर्थ हुए हैं,—ऐसे व्यक्ति कहीं भी क्यों न रहें, आप्पात्मिकता की अननी एवं अमर्य सामि-स्वरूप भारतवर्ष उनके समस्त मित्र रूप में, अधिक महिमायुक्त और उज्ज्वल भासित होगा। इस मायावी जगत् में जो एकमात्र प्रकृत सत्य है, उसके अनुपम्वान में रत प्रत्येक व्यक्ति के लिए भारतवर्ष आशा की एक प्रगल्भिता है।

अधिकांश मनुष्य शक्ति को उसी समय शक्ति समझते हैं जब वह उनके अनुभव के पौरव होकर तृष्णाकार में उनके सामने प्रकट हो

जाती है। उनकी दृष्टि में सम्पूर्णता में तत्त्वज्ञानों की अनुसन्धाइट आदि ही सूर स्पष्ट प्रकृत शक्ति के विज्ञान मध्य होते हैं; और जो भीषी की भीषि मानने से भीषी को तोड़ मोड़कर उपर-पुष्क पैदा न कर देती हो, वह उनकी दृष्टि में शक्ति का विज्ञान नहीं है — वह तो मानो जीवन का परिचापक न होकर धूमुररूप है। इमीक्षिये शांतिप्रियों से विदेशियों द्वारा शासित एक निश्चेष्ट, एकाग्रहीन एवं स्वदेशादितैक्षित्यपूर्ण भारतवर्ष उनके निबट पैसा प्रतीत होगा मानो वह गठित अस्तिधर्मों से ईकरी हुई भूमि मात्र हो।

ऐसा कहा जाता है — पाकालम ही जीवन-समय में दिव्यी होता है। तब फिर प्रष्ट उल्ला है कि साधारण चारणानुसार यह जो जाति अन्य जातियों की अपेक्षा भित्तान्त अयोग्य है, उनके दाकण जातीय दुर्माग्यचक्र में पैम जाने पर भी विनाश का कोई बिह्र दिलाई क्यों नहीं देता? तथाकथित बर्दस ही और बभरायण मानियों की शक्ति बिम प्रचर एक ओर प्रतिनि नम हामी आ रही है, उमी प्रचर दूसरी ओर दुर्माग्यचक्र (१) हिन्दुओं की शक्ति का विज्ञान नर्वापेक्षा अधिक हो रहा है — यह किम प्रचर होना है? जो खोग एक पक्ष में समस्त बिम को रच्छंविन कर सकने हैं, उनके छिये तारीक की हड़ी लग सकनी है; आ खोग कुछ छध छागों के सुम के निष्ठ संसार के अधिकार खोगों को मूखा मार सकते हैं वे भी गी/बाबिन हा सकते हैं, हिन्दु आ खोग अन्य छागों का अज्ञ न छीनार ल मो मनुष्यों को सुख और शान्ति प्रदान करते हैं, वे कस किमी प्रकार का

सम्मान प्राप्त करने योग्य नहीं हैं। शताब्दियों से दूसरों के ऊपर किसी भी प्रकार का अत्याचार न करके जासों के माध्यम का संवाहन करनेवालों के कार्य में क्या किसी प्रकार की शक्ति का विकास प्रकट नहीं होता।

सभी प्राचीन जातियों के ग्रंथों में, उनके बीरों की गाथाओं में यह देखा जाता है कि उनका प्राण उनके शरीर के किसी विशेष छेदे से अंश में बाहर रहा या; और जब तक उनका वह अंश अत्यर्पित रहा तब तक वे अजेय रहे। इसी प्रकार प्रतीत होता है कि मानो प्रत्येक जाति में ही किसी विशेष स्थान में उसकी जीवनशक्ति संक्षिप्त रहती है; और जब तक वह स्थान अनुपलब्ध बना रहेगा तब तक किसी प्रकार का दुःख या विपत्ति उस जाति का विनाश नहीं कर सकती।

बर्म ही है भारत की यह जीवनशक्ति; और जब तक हिन्दू जाति अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञानराशि को रक्षण रखेगी, तब तक संसार में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है जो उसका ध्वंस कर सके।

जो व्यक्ति हमेशा अपनी जाति के प्राचीन कार्य-कलापों की आलोचना करता है, आजकल सभी लोग उसकी निन्दा किया करते हैं। वे कहते हैं कि इस प्रकार निरन्तर अतीत की आलोचना करने के कारण ही हिन्दू जाति को माना प्रकार के दुःख और आपत्तियों भोगनी पड़ी है। किन्तु मेरी तो यह धारणा है कि इसका विपरीत ही सत्य है। जब तक हिन्दू जाति अपने अतीत के गौरव को, अपने अतीत

भारत का वैशिष्ट्य

के इतिहास को सूची हुई थी, तब तक यह सङ्ग्राहीन अवस्था में पड़ी रही। और अब अतीत काष्ठ की जितनी ही आसोचना हो रही है उतना ही चर्च और पुनर्जीवन के उद्गम दिखाई दे रहे हैं। मरिच्य को इसी अतीत के सींचे में बाढना होगा, अतीत ही मरिच्य होगा।

अतएव हिन्दू धर्म अतीत के इतिहास की जितनी ही आसोचना करेगी, उनका मरिच्य उतना ही उम्भर होगा; और जो कोई भी इस अतीत के बारे में प्रत्येक व्यक्ति को बिड़ करने की चेष्टा कर रहे हैं, वे ही स्वयं के परम हितकारी हैं। भारत की अवनति इसलिये नहीं हुई कि हमारे पूर्वजों के नियम एवं आचार-व्यवहार सराबर थे, बल्कि उसकी अवनति का कारण यह था कि उन नियमों और आचार-व्यवहारों का न्यायत ओ परिणाम होना चाहिए था, उनमें उनके परिणत नहीं होने दिया गया।

भारतवर्ष का इतिहास पत्रिकाएँ प्रत्येक विचारशील पाठक यह जानता है कि भारत के सामाजिक विचार प्रत्येक युग के धाय परिवर्तित हुए हैं।

आरम्भ से ही ये नियम समाभिप्यन्नमान एक मिश्र संश्लेष के तत्कालीन समाज में पट्टीभूत करने की चेष्टा में तत्पर रहे। प्राचीन भारत के ऋषिगण इनमें दूरदर्शी थे कि उनके ज्ञानराशि के प्रत्येक को समझने में दिव्य को अब भी सन्धि तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, और उनके बराबरों द्वारा इस महान् उद्गम का पूरा रूप में प्रत्येक करने की यह अनुमति ही भारत की अवनति का प्रथम कारण है।

प्राचीन भारत सदियों तक ब्राह्मण और क्षत्रिय अपने इन दो सर्वप्रधान जातियों की उच्चात्मिक, य. पूर्ण उद्देश-पूर्ति के लिये एक युद्धक्षेत्र रहा था।

एक ओर ब्राह्मणगण साधारण प्रजा पर क्षत्रियों के अन्यायपूर्ण सामाजिक अत्याचार को निर्मूलक करने में बृह-संकल्प हो बटे हुए थे — उन प्रजा को क्षत्रियगण अपने वर्म-संगत स्थाय के रूप में देखा करते थे — और दूसरी ओर, भारत की एकमात्र शक्तिसम्पन्न क्षत्रिय जाति में जनता को ब्राह्मणों के आध्यात्मिक अत्याचार से बचाने तथा उनके क्रमवर्धमान नये नये क्रियावाण्डव्य अन्धधर्मों से उसका छुड़ाने के लिए कसर कसी थी। इसमें क्षत्रियों को कुछ परिमाण में सफलता भी मिली थी।

दोनों जातियों का यह संघर्ष अति प्राचीन काल से आरम्भ हुआ था। समस्त शक्तियों में यह स्पष्ट रूप से प्रकट है। कुछ समय के लिए यह विराम कर हो गया जब क्षत्रियों तथा क्षामकण्ड ने नेता श्रीकृष्ण ने यह दिखवा दिया कि दानों विख्या दसों का मेछ किस तरह हो सकता है। उनके परिणामस्वरूप नि सृज हुई गीता की शिक्षा — जो दर्शन, सदारता एवं धर्म का सारस्वरूप है। किन्तु संघर्ष का कारण तब भी विद्यमान था, जब उसका परिणाम अनिवार्य था। निर्वन एवं त्रिदिविज जनता पर प्रमुख स्थापित करने की उच्चाकांक्षा इन दानों जातियों के मस्तिष्क में वर्तमान थी जब पुन घोर संघर्ष की उत्पत्ति हुई। हमें उस समय का जो कुछ थोड़ा सा साक्ष्य

भारत का वैशिष्ट्य

उपस्थित है, वह प्राचीन काल के उमी प्रवृत्त मर्याद की क्षीण प्रतिबिम्ब मात्र है। किन्तु अन्त में क्षत्रियों की विजय हुई, ज्ञान की जीत हुई, स्वाधीनता की जीत हुई; वर्मकाण्ड की प्रधानता अथ और न रह गई तथा कर्मकाण्ड का अधिकांश हमेशा के लिए नष्ट हो गया।

यह वही उत्पान था जिसे हम बौद्ध-संस्कार के नाम से अभिहित करते हैं। वर्म की ओर से देखने पर यह उत्पान कर्मकाण्ड के हाथों स मुक्ति का सूचक है, और रात्रमीति के परिचयेन से यह क्षत्रियों के द्वारा ब्राह्मणों के प्राबाल्य का विनाश सूचित करता है।

यह एक विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है कि प्राचीन भारत में जिन दो सर्वश्रेष्ठ पुरुषों ने अल्प प्रयत्न किया था, वे दोनों ही क्षत्रिय थे। वे कौन थे? — वे थे हृष्य और बुद्ध। और यह उससे भी अधिक ध्यान देने योग्य बात है कि इन दोनों ही अस्त्रियों में क्षिण और जाति भेद को न मानकर सबके लिए ज्ञान का द्वार उन्मुख कर दिया था।

बौद्ध धर्म में अतुल्य नैतिक बल नियोजन रहने पर भी उनकी अधिकतर शक्ति खैर व्रत में ही निपाजित की जान के कारण उसे अपनी जन्मभूमि में ही अज्ञान विनाश देनेवा पड़ा, ऐसे उत्सव को कुछ शय रहा वह जिन कुक्षरकारों तथा क्रियाकाण्डों के निवारण के लिए नियोजित किया गया था, उनसे क्षणश अधिक ममानक कुक्षरकारों और क्रियाकाण्डों में पैदा गया। यद्यपि आश्रित रूप में वह वैदिक पशुबलि निवारण करने में प्रयत्न हुआ, पर उससे ममत्ता देश

भारत का वैश्वत्व

आर्यावर्त के उन राज्यों और क्षत्रियों का क्या हुआ ! उनका नाम हमेशा के लिए मिट गया, इधर उधर ब्राह्मण्य एवं क्षत्रियत्व पर अभिमान करनेवाली केवल कुछ निहित आदित्यों ही बच रह गईं, और इन आदित्यों के इस प्रकार बढ़कर तथा आत्मप्रशंसापूर्ण वाक्यों के कहने पर भी कि : 'इस देश (महावर्त या अर्वाचि देश) में पैदा हुए राज्यों से ही संसार के सभी मनुष्य चरित्र-निर्माण की शिक्षा प्राप्त करेंगे,'* इन लोगों को दोषबोध में दक्षिणात्यो के पत्रास्त में बैठकर निरपूरक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी। इसका परिणाम हुआ भारत में वेदों का पुनरुद्भव, — वैदिक का ऐसा प्रकट पुनरुत्थान जैसा भारत में और कभी नहीं देखा जा; यही तक कि गृहपात्रमी भी आर्यकों के आदपन में संलग्न हो गए।

बौद्ध धर्म के प्रचार में क्षत्रियगण ही वास्तव में नेता रहे थे तथा बड़ी संख्या में उन्होंने बौद्धधर्म स्वीकार किया था। संस्कार तथा इस प्रकार अन्य धर्म-ग्रहण के अन्तर्गत में संस्कृत भाषा लोगों द्वारा उपेक्षित होकर छोड़-प्रश्लिष्ट भाषाओं की वर्णा प्रकट रूप से छुलक जा गई थी, और अधिकांश क्षत्रिय वैदिक साहित्य एवं संस्कृत शिक्षा का छत्र से बाहर हो गए थे। अतएव दक्षिणात्यो से यह जो संस्कार-तरंग उद्भूत हुई उसने कुछ बीना तक केवल राज्यों का ही उपकार हुआ, पर भारत के दोष छालों के पैरों में उसने पड़े से भी अधिक धूमठा डाल दी।

* इतिहासपुराण संहिताद्वयप्रमाणः।

क्षत्रियता सदा से ही भारत का मेहरबान रहे हैं, अतएव वे ही विज्ञान और स्वतन्त्रता के सनातन रक्षक हैं। देश से कुर्वश्वरों को हटा देने के लिए विरक्त से ही उनकी बग़बाणी प्रतिष्ठापित हुई है, और भारतवर्ष के इतिहास के आदि से अन्त तक प्राक्षणों के अत्याचार से साधारण जनता की रक्षा करने के लिए वे स्वयं एक अभेद्य दीवार की भाँति खड़े रहे हैं।

जब उनमें से अधिकांश घोर अज्ञानता में निमग्न हो गये, और क्षेम घोषों ने जब मज्जेशिपा की जंगली जातियों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित कर भारत में पुरोहितों की सक्ति बढ़ करने के लिए तत्पार हाथ में ली, तब तो भारत के पाप का प्याला बहाकर मर गया और भारतभूमि एकदम नीचे डूब गई, — और इससे इसका उद्धार उद्यम तब नहीं होगा जब तक कि क्षत्रियता स्वयं न जागेगी तथा अपने को मुक्त कर देश जातियों के पैरों से अंगीरों को न खाएँगे। पुरोहित ही भारत की अजायब का मूल कारण है। मनुष्य अपने माँ के पतिन बनाकर क्या स्वयं पतित होने से बच सकता है ?

राजन्य, स्वर्ण रक्षिये, आपके पूर्वजों द्वारा आनिष्टत सत्त्वों में सर्वोत्तम सत्त्व है — इस ब्रह्माण्ड का एकत्व। क्या कोई व्यक्ति स्वयं का किसी प्रकार अनिष्ट किये बिना दूसरों को हानि पहुँचा सकता है ? प्राक्षण और क्षत्रियों के ये ही अत्याचार चक्रवृत्ति ध्यान के नियमानुसार वर्तित हो जब स्वयं उनकी के चिर पर पतित हुए हैं, एव यह हमारी

वर्ष की पराधीनता और अशक्ति निश्चय ही उन्हीं के कर्णों के अनिवार्य फल का भोग है। आपके एक पूर्वज ने जिन्हें लोग ईश्वर का अकारण समझते हैं, कहा था, "इदृश तैरहितं सर्गं येषां साम्ये स्थितं मनः" अर्थात् "जिनका मन साम्यभाव में अवस्थित है उन्होंने भीष्म दश में ही संसार पर अय-छात्र कर लिया है।" हम सभी का यही विश्वास है। तब क्या उनका यह वाक्य अश्वीम प्रथम के समान है? यदि नहीं है—और हम जानते हैं कि ऐसा नहीं है—तब तो समस्त मनुज जगत् के जन्म विनिर्दिष्ट, यहाँ तक कि गुणनिर्दिष्ट इस सम्पूर्ण साम्य के विरुद्ध कोई भी चेष्टा अश्वीम भ्रमपूर्ण है, और जब तक मानव इस साम्य-ज्ञान को प्राप्त नहीं करता, तब तक वह कभी मुक्त नहीं हो सकता।

अथ, ह रामन्, आप वेदान्त के उपदेशों का पाठन कीजिए — किसी अनुसन्तमुक्त भाव्यकर अथवा टीकाकार के अनुसार नहीं, बल्कि उसी प्रकार, जिस प्रकार आपके अन्तर्धानी मनु आपका समझते हैं। सर्वोपरि, सर्वमूर्तों में, समस्त वस्तुओं में इस समझान-रूप महान् उपदेश का पाठन कीजिए — सर्वमूर्तों में उसी एक भगवान् को अवस्थित देखिए।

यही मुक्ति का पथ है, वैश्य ही अश्वीम का मार्ग है। कोई व्यक्ति या कोई जानि बाह्य-पञ्च-ज्ञान के बिना आप स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकती, और मानसिक दृष्टिों के पञ्च-ज्ञान के बिना मानसिक स्वाधीनता का लाभ भी उसे नहीं हो सकता।

अज्ञान, मेदबुद्धि एवं वासना ये तीनों ही मानव-वासि के दुःख के कारण हैं, और उनमें एक के साथ दूसरे का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। अपने बाप को अन्य मनुष्यों की अपेक्षा, यहाँ तक कि पशु से भी श्रेष्ठ समझने का किसी को क्या अधिकार है ? वास्तव में तो सर्वत्र एक ही कसू बिराजमान है। “त्व खी, त्वं पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी” — “तुम खी हो, तुम पुरुष हो, तुम कुमार हो एवं तुम ही कुमारी हो।”

बहुत से लोग कहेंगे, “इस प्रकार सोचना तो उपासी को ही शोभा देता है, उनके लिए ही यह ठीक है, किन्तु हम सब तो गृहस्थ हैं।” अवश्य ही, गृहस्थ को दूसरे अनेक कर्तव्यों का पाठ्य करना पड़ता है, अतः वह इस समय-मात्र में इतना स्थिर नहीं रह सकता, परन्तु उन लोगों का आदर्श भी यही होना उचित है, क्योंकि इस समस्त माय को प्राप्त करना ही सभी समाजों का, समस्त यौवों का एवं समस्त प्रकृति का आदर्श है। पर अफसोस ! आग समझते हैं कि वैषम्य ही समता की प्राप्ति का मार्ग है, मानो अन्याय करते करते वे न्याय के रास्ते पर आ पहुँचेंगे।

यह वैषम्य ही मनुष्य-प्रकृति की ओर दुर्बलता है, मनुष्य जाति के ऊपर अभिशापस्वरूप है तथा समस्त दुःख-वश्यों का मूलस्वरूप है। यही मोक्षिक, मामयिक तथा व्याख्यात्मक सर्वविध धर्मों का मूल है।

“सर्वं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीदृशम्।

न हिमस्मात्पताम्नान् ततो याति परां गतिम्।”

भारत का भविष्य

“ ईश्वर को सर्वत्र समान रूप से अवस्थित देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते, अतएव परमगति प्राप्त करते हैं। ”

इसी एक श्लोक के द्वारा, पात्रों से शब्दों में मुक्ति का धार्मिक उपाय बतसाया गया है।

आप राजपूत लोग ही प्राचीन भारत के गौरव-स्वरूप रहे हैं। आप लोगों की अवगति के साथ ही राष्ट्रीय अवगति आरम्भ हो गई, और भारत का उत्थान केवल तभी हो सकता है, जब क्षत्रियों के वंशज ब्राह्मणों के वंशजों के साथ समवेत प्रयत्न में कटिबद्ध होंगे — सूटे हुए बैमन और शक्ति का बटवारा करने के लिए नहीं, बल्कि अध्यात्मिकों को ज्ञान प्रदान करने के लिए एक-पूर्वों की पवित्र निवासभूमि को लौट्टे हुए महिमा के पुनःस्थापन के लिए।

कौन कह सकता है कि यह छुम मुहूर्त नहीं है। फिर से बाज-चक्र घूमकर आ रहा है, एक बार फिर भारत से बड़ी शक्तिप्रवाह निकल रहा है जो शीघ्र ही सम्पूर्ण अगस्त को व्याप्त कर देगा। एक बाणी मुद्रित हुई है जिसकी प्रतिध्वनि चारों ओर व्याप्त हो रही है एवं जो प्रतिदिन अधिकाधिक शक्ति संग्रह कर रही है, और यह बाणी इसके पहले की सभी बाणियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है क्योंकि यह अपने पूर्वजों तक सभी बाणियों का समग्रसंग्रह है। जो बाणी एक समय बलरत्नमिनामिनी सरस्वती का तौर पर कविता के अन्ततल में प्रकटित हुई थी, जिस बाणी ने रत्नगुणमिमांसादि विविध विषयों के शिखर शिखर पर प्रतिध्वनित हो कण्ठ, बुद्ध

और वैतन्यदेव में से होते हुए समस्त प्रदेशों में अवरोहण कर समस्त देश को प्लाविन कर दिया था, वही बाणी एक बार पुन मुकुरित हुई है। एक बार फिर से द्वार खुल गए हैं। आइये, हम सब आत्मोक्त-राज्य में प्रवेश करें—द्वार एक बार पुन उन्मुख हो गए हैं।

हे मेरे प्रिय रामन्, आप उची जाति के वंशधर हैं जो सनातन धर्म का जीवन्त आचार-सम्भाररूप हैं एवं जो उच्च सनातन धर्म की कर्तव्यवद् रक्षक और सहायक हैं, आप ही क्या इससे दूर रहेंगे ? मैं जानता हूँ, यह कमी नहीं हो सकता। यह मेरी बुरा घारणा है कि आपका ही हाथ सर्वप्रथम फिर से धर्म की सहायता के लिए आगे बढ़ेगा। और जब भी, हे राजा जनितसिंह, मैं आपके घारे में सोचता हूँ तब यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि आपमें आपकी वंशागत सर्वविरचित वैदिक शिक्षा के साथ ही सब मानवों के प्रति असीम प्रेमपुल्ल ऐसे पवित्र चरित्र का सम्मिलन हुआ है जिससे एक साथ भी गौरवान्वित हो सकता है; और अब ऐसे व्यक्ति ही सनातन धर्म के पुनर्गठन के इच्छुक हैं, तब मैं उसके महागौरवशाली पुनरुद्धार में निश्चय रखे बिना नहीं रह सकता। सर्वदा ही आप तथा आपके स्वजनों पर श्रीरामकृष्णदेव के आशीर्वाद की वर्षा हो, और दूसरों के उपकारार्थ एवं सत्य-प्रचार के लिए आप दीर्घकाल तक जीवित रहें—यही विवेकामन्द की सदैव प्रार्थना है।

हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

- १३ भीष्महृत्कण्ठकण्ठसूत—तीस भागों में—प्रत्येक ५ सुवर्णित निशाने
 'विस्तृत प्रथम भाग (कृतीय संस्करण)—मूल्य ६)
 द्वितीय भाग—मूल्य ६) कृतीय भाग—मूल्य ११)
- ४५ भीष्महृत्कण्ठकण्ठसूत—(विस्तृत जीवनी)—(कृतीय संस्करण)—
 दो भागों में प्रत्येक भाग का मूल्य ५)
 ६ विवेकानन्द-चरित—(विस्तृत जीवनी)—प्रथम भाग मूल्य ६)
 (द्वितीय संस्करण)—मूल्य ६)
 ७ विवेकानन्दजी के संन्यास—(बाणभट्ट)—विश्व साहित्य दि. में मूल्य ५।)
 ८ परमार्थ प्रदीप—स्वामी विवेकानन्द (भारत केरल पर जारी हुई)
 कपड़े की प्रिन्ट मूल्य १।।)
 कार्डबोर्ड की प्रिन्ट ३।)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

- | | |
|---------------------------------------------|----------------------------------------------|
| ९ भारत में विवेकानन्द (दि. में) ५) | १० परिग्रह (४ ५) १।) |
| ११ श्रमयोग (प्र. सं.) ३) | ११ श्रमयोग (प्र. सं.) ३) |
| ११ सेवाश्रम (प्र. सं.) १०) | ११ सेवाश्रम (प्र. सं.) १०) |
| १२ पञ्चावली (प्रथम भाग)
(प्र. सं.) १०) | १२ महाभारत की जीवन-पाठ्य
(दि. में) १।) |
| १३ पञ्चावली (द्वितीय भाग)
(प्र. सं.) १०) | १३ व्याख्यान-संग्रह में विज्ञान
(३ ५) १०। |
| १४ समारम्भ (दि. सं.) १।।०) | १४ समारम्भ (३ ५) १०। |
| १५ समारम्भ (दि. सं.) १।।०) | १५ समारम्भ (३ ५) १०। |
| १६ हिन्दू धर्म (दि. सं.) १।।) | १६ हिन्दू धर्म (३ ५) १०। |
| १७ प्रेमयोग (प्र. सं.) १०) | १७ प्रेमयोग (३ ५) १०। |
| १८ समारम्भ (प्र. सं.) १०) | १८ समारम्भ (३ ५) १०। |
| १९ आत्मसुख-संग्रह (प्र. सं.) १।) | १९ आत्मसुख-संग्रह (३ ५) १०। |

- १ हिन्दू धर्म के पञ्च में (हिं सं) ॥३॥
 ११ कवितामयी (प्र सं) ॥३॥
 १२ मेरे गुरुदेव (प्र सं) ॥३॥
 १३ भगवान रामहृदय धर्म तथा धर्म (हिं सं) ॥३॥
 १४ छविवासी विचार (हिं सं) ॥३॥
 १५ कर्ममाल मरुत (प्र सं) ॥३॥
 १६ मेरा जीवन तथा ज्योष (हिं सं) ॥३॥
 १७ परवारी बाला (हिं सं) ॥३॥
 १८ मरुतोत्तर जीवन (हिं सं) ॥३॥
 १९ सब की छविवासी तथा जीवन-
 गहन की सान्त्वना (प्र सं) ॥३॥
 ४ सरल रामयोग (प्र सं) ॥३॥
 ४१ मेरी स्मरण-नीति (प्र सं) ।
 ४२ ईश्वर ईसा (प्र सं) ।
 ४३ विवेकानन्दजी की कथाएँ
 (प्र सं)
 ४४ विवेकानन्दजी से बतलाव
 (प्र सं)
 ४५ वीरताव — स्वामी
 शारदाचन्द्र (प्र सं) २
 ४६ वेदाङ्ग — स्वामी शारदाचन्द्र,
 (प्र सं)
 ४७ श्रीरामहृदय-उपदेश
 (प्र सं) ।

मराठी विभाग

- ११ श्रीरामहृदय-चरित्र — प्रथम भाग (हिंदी भाषा)
 द्वितीय भाग (हिंदी भाषा)
 १ श्रीरामहृदय-कथासूत्र — (हिंदी भाषा)
 ४ श्रीरामहृदय-कथासूत्र — (हिंदी भाषा)
 ५ शिक्षणो-भ्यासार्थ — (हिंदी भाषा) — स्वामी विवेकानन्द
 ६ माझे गुरुदेव — (हिंदी भाषा) — स्वामी विवेकानन्द
 ७ हिंदु-धर्माचे नव-वाक्य — () —
 ८ परवारी बाला — (हिंदी भाषा)
 ९ कर्मयोग — (हिंदी भाषा)
 १० शिक्षण — (हिंदी भाषा)
 ११ साधु बागमहात्म्य-७

